Journal of Advances and Scholarly Researches in Allied Education
Vol. 12, Issue No. 2, January-2017, ISSN 2230-7540

हिन्दी चित्रपट संगीत में पार्शवगायन का उद्भव और विकास

Komal Vashistha[1]* Dr. Kiran Hooda[2]

[1] Research Scholar, OPJS University, Churu, Rajasthan

[2] Assistant Professor, OPJS University, Churu, Rajasthan

सार – चित्रपट पार्शवगायन परम्परा विशुद्ध रूप से बीसवीं शताब्दी की देन है। पार्शव संगीत का उद्देश्य किसी घटना एवं स्थिति को स्वर-सज्जा के माध्यम से अभिव्यक्त करना है। यह संगीतकार की कल्पना शक्ति पर निर्भर करता है कि वह इस अभिव्यक्ति को अधिक प्रभावी बनाने के लिए किस प्रकार का पार्शव संगीत रचता है।

---------------------------------X---------------------------------

पार्शव संगीत पूर्व में घटित घटनाओं और आने वाली घटनाओं को ध्यान में रखकर संयोजित किया जाता है। चित्रपट में पार्शव संगीत कहानी को एक सूत्र में पिरोए रखने का कार्य करता है।[1] पार्शव संगीत की कल्पना वाद्यों के बिना संभव नहीं है। संगीत में जितना महत्त्व गायन अथवा गीत रचना का होता है उतना ही पार्शव संगीत का भी रहता है। विशेषकर नाटक, चित्रपट, नृत्य, नाटिका, संगीतिका इत्यादि में प्रसंगवश पार्शव संगीत नितान्त आवश्यक होता है। कोई भी गीत, ग़ज़ल या फिल्मी संगीत बिना वाद्यों के नीरस और बेजान होता है। गीत के बोलों के अनुरूप वाद्य ऐसे भावमय वातावरण की सृष्टि करते हैं जो गीत के आकर्षण, माधुर्य एवं सौन्दर्य को और भी प्रभावी बनाते हैं। चित्रपटों में संगीत के दो भाग होते हैं एक गीत-संगीत और दूसरा पार्शव संगीत। गीतों की धुनें तैयार कर उनके साथ जो संगीत दिया जाता है वही गीत-संगीत कहलाता है तथा चित्रपटों के विभिन्न दृश्यों को प्रभावशाली बनाने के लिये स्थिति और भाव के अनुसार जो संगीत दिया जाता है वह पार्शव संगीत कहलाता है।[2]

माना जाता है कि पार्शव संगीत का प्रयोग तब शुरू हुआ जब किसी भाव को दर्शकों के मष्तिष्क में अचानक ही धीरे-धीरे उत्पन्न करने की आवश्यकता अनुभव हुई। तत्पश्चात चित्रपटों में पार्शव संगीत तथा गीतों की रचना एक आवश्यक अंग बन गई जिसके बिना कहानी के भावों का प्रकटीकरण असंभव हो गया। चित्रपटों में गीत संगीत की यह परम्परा मूक युग से ही प्रारम्भ हो गई थी। मूक चित्रपटों को रोचक बनाने के लिये गीत-संगीत का प्रयोग किया जाता था। प्रसिद्ध संगीतकार नौशाद अली ने अपने साक्षात्कार में बताया कि "मैं उस जमाने की बात कर रहा हूं, जब मेरी उम्र कोई 12-13 साल की रही होगी, हमारे लखनऊ में एक 'रॉयल सिनेमा' होता था। वहां उस्ताद लड्डन खां दोनों हाथों से पैर-पेटी (हारमोनियम) बजाया करते थे। बाबू लाल क्लारियोनेट बजाया करते थे। उस्ताद कल्लन तबला बजाते थे और गौहर नाम का एक लड़का गाया करता था। ये सभी लोग पहले फिल्म का ट्रायल देखकर सूची बना लेते थे कि कहां लड़ाई, रंज, खुशी, शादी या डांस है। उसके अनुसार ठुमरी, दादरा और ग़ज़ल गाते थे। कोई संजीदा सीन रहता तो उसी तरह का संगीत होता था। इससे फोल्म में जान आ जाती थी क्योंकि डायलॉग तो होते नहीं थे। मैं भी रोजाना चार आन्ने टिकट लेकर वहां जा बैठता। वहीं से संगीत का जादू मुझ पर छाने लगा।"[3]

नौशाद साहब का यह शौक उनको गुरबत अली की दुकान तक ले गया जहां नौशाद साहब ने वाद्यों की साफ-सफाई का कार्य संभाला और इस प्रकार मां सरस्वती की सेवा प्रारम्भ की। अवसर मिलने पर चोरी छिपे वे इन वाद्यों पर अपना हाथ भी आजमाने से नहीं चूकते थे। किन्तु जब गुरबत अली को उनके संगीत के शौक और लगन के बारे में पता चला तो उन्होंने इन्हें एक हारमोनियम भेंट कर घर पर विधिवत् अभ्यास

www.ignited.in

करने के लिए कहा। शीघ्र ही उन्होंने लड्डन खां साहब को बुलाया जो मूक चित्रपटों के प्रदर्शन पर गाया-बजाया करते थे। नौशाद ने उन्हें हारमोनियम सुनाया जो उन्हें बहुत पसन्द आया। इस प्रकार नौशाद साहब प्रतिदिन हारमोनियम बजाने जाने लगे। नौशाद का यही पहला सिनेमा हॉल था जहां मूक चित्रपटों में संगीतकार अपना गायन-वादन प्रस्तुत करते थे। यह था मूक-चित्रपट के युग के गीत-संगीत का सफर जो सवाक् चित्रपट आने के पश्चात् भी आगामी कई वर्षों तक जारी रहा। 14 मार्च, सन् 1931 में जब भारत का प्रथम बोलता चित्रपट 'आलम आरा' का प्रदर्शन हुआ तब से उस क्रांतिकारी युग का प्रारम्भ हुआ जब चित्रपट पर चलती-फिरती मूक तस्वीरों को आवाज़ (स्वर) मिल गया। सवाक् चित्रपटों का यह निर्माण विद्वान संगीतकारों का एक समूह लेकर आया। इन सभी संगीतकारों को अपनी विद्वता, कला-साधना और अपने संगीत के प्रति समर्पण पर पूरा विश्वास था।

कालान्तर में इन कला साधकों की अमूल्य रचनाओं ने सवाक् चित्रपट युग को गीत-संगीत द्वारा नवजीवन और नवचेतना प्रदान की। इन संगीतकारों के आत्मविश्वास के पीछे शास्त्रीय संगीत की परम्परा थी। इस संगीत परम्परा को उन्होंने अपने-अपने गुरूओं से प्राप्त किया और इसे आगे बढ़ाया। ऐसे अनेक संगीतकार हुए जो इस क्षेत्र में आए जैसे उस्ताद झण्डे खां, सरस्वती देवी, अनिल विश्वास, गुलाम मोहम्मद, एस.एन. त्रिपाठी, खेमचन्द प्रकाश, शंकरराव व्यास, नौशाद अली, मदनमोहन, वसन्त देसाई, सी. रामचन्द्र, एस.डी. बर्मन, शंकर-जयकिशन, रोशन, कल्याणजी-आनन्द जी इत्यादि जिन्होंने अविस्मरणीय पार्शव संगीत देकर हिन्दी चित्रपट संगीत की इस परम्परा को जीवन्त रखा।

सन् 1931 में जब सवाक् चित्रपटों का युग आरम्भ हुआ तो हिन्दी चित्रपटों में गायन लगभग अनिवार्य हो गया। उस समय पार्शव गायन पद्धति का प्रचलन नहीं हुआ था। इसी कारण चित्रपटों में केवल उन्हीं अभिनेता और अभिनेत्रियों का चुनाव किया जाता था जो अभिनय के साथ-साथ स्वयं गाने की क्षमता रखते थे। इन दिनों प्रत्यक्ष गायन का प्रचलन था, इसलिये कई बार अच्छी शक्ल सूरत और प्रभावशाली व्यक्तित्व वाले अभिनेता अथवा अभिनेत्री जिनका अभिनय कितना ही अच्छा हो यदि उसे गाना नहीं आता तो उसे चित्रपटों में प्रवेश नहीं मिलता था। इसके विपरीत अच्छी शक्ल सूरत न होने पर भी यदि अभिनय के साथ-साथ जिसे गाना भी आता हो उन्हें अभिनेता या अभिनेत्री चुन लिया जाता था। परिणामस्वरुप हिन्दी चित्रपट संसार में उन अभिनेता एवं अभिनेत्रियों की मांग बढ़ने लगी जो अभिनय के साथ-साथ अच्छा गा भी सकते थे। इनमें कुंदन लाल सहगल, पंकज मलिक, गोविन्दराव टेम्बे, विनायकराव पटवर्धन, अशोक कुमार, सुरेन्द्र, खुशी, नूरजहां, कानन बाला, पहाड़ी सान्याल, जुबैदा, डब्ल्यू. एम. खान, सुरैया इत्यादि प्रमुख थे।[4]

इन संगीत निर्देशकों, गायक-अभिनेता और अभिनेत्रियों ने प्रथम सवाक् चित्रपट 'आलमआरा' से चित्रपट जगत की बागडोर अपने हाथों में ली और गीत-संगीत की एक ऐसी यात्रा प्रारम्भ की जो कभी ना समाप्त होने वाली थी, ऐसी परम्परागत यात्रा जिसे एक के बाद एक आते हुए नये निर्देशकों और गायकों ने आगे बढ़ाया।[5] 14 मार्च 1931 का दिन भारत की जनता के लिये बड़ी उत्सुकता का दिन था क्योंकि इस दिन आश्चर्यचकित कर देने वाली घटना घटी थी। इम्पीरियल चित्रपट कम्पनी ने प्रथम बोलते चित्रपट 'आलम-आरा' का प्रदर्शन बम्बई के मैजेस्टिक सिनेमा हॉल में किया। इसके निर्माता-निर्देशक खान बहादुर आर्देशीर एम. ईरानी ने रंगमंच के एक प्रसिद्ध नाटक 'आलम-आरा' को लेकर चित्रपट बनाया। इस चित्रपट के गीत प्रसिद्ध नाटककार जोसेफ ने लिखे थे। इस चित्रपट के अभिनेता और अभिनेत्री थे मास्टर विट्ठल, पृथ्वीराज कपूर, डब्ल्यू. एम. खान तथा जगदीश सेठी। इसके बारह गीतों को फिरोजशाह मिस्त्री ने संगीतबद्ध किया था। इसके दो गीत बड़े लोकप्रिय हुए। प्रथम जुबैदा का गाया गीत "रब तू सितमगारों से" और दूसरा डब्ल्यू. एम. खान द्वारा गाया गीत "दे दे खुदा के नाम पर।"[6]

आलमआरा के प्रदर्शन के बाद दूसरे आने वाले चित्रपटों ने भी गीत-संगीत की परम्परा को आगे बढ़ाया। वर्ष 1932 में ‘इन्द्रसभा’ चित्रपट का प्रदर्शन हुआ जिसमें 72 गाने थे। यद्यपि यह चित्रपट गीत प्रधान था किन्तु इसका कोई भी गीत-प्रशंसा न पा सका जबकि इस चित्रपट के संवादों का प्रयोग भी एक गीत से दूसरे गीत का तालमेल बिठाने के लिये किया गया था।[7] आलमआरा के पश्चात् एक बड़े चित्रपट "शीरी-फरहाद" का निर्माण एवं प्रदर्शन हुआ। इस चित्रपट में 17 गाने थे। जहांआरा कज्जन की सुरीली आवाज और सर्वोत्तम ध्वन्यांकन के कारण इस चित्रपट ने देश भर में खूब प्रशंसा प्राप्त की और खूब धन अर्जित किया। यही चित्रपट था जिसने आगामी चित्रपटों के लिये गीत-संगीत को अनिवार्य ही कर दिया। सन् 1932 में प्रदर्शित चित्रपट 'मुहब्बत के आंसू' में अख्तरी बाई और

सहगल कश्मीरी ने अभिनय और गायन किया। सहगल कश्मीरी आगे चलकर 'के.एल. सहगल' के नाम से विख्यात हुए।[8] वर्ष 1933 में देवकी बोस ने 'पूरन भगत' चित्रपट का निर्माण किया जिसके संगीतकार आर.सी. बोराल थे। उन्होंने इस चित्रपट में पहली बार ऑर्केस्ट्रा का प्रयोग किया।[9] इसी वर्ष देवकी बोस ने 'यहूदी की लड़की' चित्रपट का निर्माण किया, जिसमें सुश्री रतनबाई और सुश्री ताराबाई ने गीतों को अपने मधुर स्वर दिये।

इस दौर में चूंकि प्रत्यक्ष गायन का प्रचलन था। अत: इस पद्धति के कारण अनेक कठिनाईयों का सामना करना पड़ता था। चित्रपट निर्माता-निर्देशकों की दृष्टि अब उन अभिनेता और अभिनेत्रियों पर पड़ने लगी जो आकर्षक व्यक्तित्व के साथ-साथ अभिनय में प्रवीण तो थे किन्तु उनकी आवाज में सुरीलेपन की मिठास नहीं थी। जब ऐसे कलाकारों की ओर ध्यान गया तो ऐसे प्रयास आरम्भ हुए जिनमें किसी प्रकार ऐसे कलाकार जो अच्छा गा तो नहीं सकते परन्तु अभिनय प्रतिभा उच्च कोटि की रखते हैं, को पर्याप्त अवसर मिल सके। अन्तत: वो दिन भी आ गया जब चित्रपट संगीत में एक क्रांतिकारी परिवर्तन आया जब सुप्रसिद्ध गायिका पी. हीरालक्ष्मी ने चित्रपट 'भाग्य-चक्र' में बेगमपारा के लिये गीत गाया। इस चित्रपट 'न्यू थियेटर्स' ने वर्ष 1934 में प्रदर्शित किया। इस चित्रपट का निर्माण एवं निर्देशन नितिन बोस ने प्रेम अदीम और बेगम पारा को लेकर किया। इस चित्रपट में एक शास्त्रीय गीत था परन्तु चित्रपट की अभिनेत्री बेगम पारा शास्त्रीय गाना नहीं जानती थी। इसके लिये काफी मेहनत की गई परन्तु कुछ परिणाम नहीं निकला। एक बार पी. हीरालक्ष्मी को गीत गाते देख नितिन बोस को लगा यदि इस गीत को हीरालक्ष्मी की आवाज में फिल्माया जाये तो बात बन जायेगी। जब बेगम पारा को इसका पता चला तो उन्हें यह अपना अपमान लगा परन्तु किसी तरह अक्तूबर 1935 में बेगम पारा को इसके लिये मना लिया गया और फिल्म पूरी हुई।[10]

इस घटना ने चित्रपट की दुनिया में पार्शव गायन को जन्म दिया। इस गीत में बेगम पारा पर्दे पर होठ हिला रही थी और पी. हीरालक्ष्मी ने पर्दे के पीछे से गाया। हीरालक्ष्मी के बाद जी.एस. दुर्रानी, राजकुमारी, उमाशशि, के.एल. सहगल, सरस्वती देवी, सुरेन्द्र, देविका रानी, कानन देवी, सुन्दरबाई, पंकज मलिक, अरूण कुमार, रहमत बानो, नूरजहां, शमशाद बेगम, शान्ता आप्टे, गायिका पारूल घोष, अमीर बाई, जोहराबाई, ताराबाई, सुरैया, रामचंद्र इत्यादि कलाकारों ने इस परम्परा को आगे बढ़ाया। पार्शव गायन की यह पद्धति लोगों को इतनी पसन्द आई कि फिल्म उद्योग में इसका प्रचलन सामान्य बात हो गई। किन्तु निर्माता और निर्देशक इस बात की ओर अधिक ध्यान देते थे कि गीत को पार्शव से ही गवाया जाए, परन्तु वह ज्यादा महंगा न हो इसीलिए गायक को पहले से ही इतनी रिहर्सल करा ली जाए और सबको इस प्रकार बिठाया जाये ताकि गीत एक ही बार में फिल्माया जा सके। गीत को बार-बार फिल्माना (रीटेक) कितना महंगा पड़ता था यह इस बात से पता चलता है कि सोहराब मोदी और मेहताब द्वारा अभिनीत 'झांसी की रानी' के एक गीत को चौदह बार रीटेक करना पड़ा तो चित्रपट का बजट दोगुना हो गया। परिणामस्वरुप, इस रीटेक से बचने के लिये फिल्मकारों ने गीतों को टेप करना शुरू कर दिया। वर्ष 1905 में डॉ. रॉबर्ट कॉक ने टेप का आविष्कार किया था। इसे कोक-फीता अथवा चुम्बकीय फीता भी कहा जाता था क्योंकि इस विधि में चुम्बकीय ध्वनि का संग्रहण किया जाता था।

नौशाद अली ने अपने संस्मरणों का उल्लेख अपने एक साक्षात्कार में किया है। वे कहते हैं 'सबसे पहले पार्क ढूंढने के बाद सारे साजों को वहां ले जाया जाता और माइक्रोसॉफ्ट लगाकर बड़े-बड़े वाद्य यन्त्रों को माइक्रोसॉफ्ट के सामने रख दिया जाता जैसे पियानों, हारमोनियम, जलतरंग आदि। छोटे-छोटे वाद्यों के वादक बारी-बारी माइक्रोसॉफ्ट के सामने आकर अपना हिस्सा बजाकर शान्ति से हट जाया करते। गायक भी अपना हिस्सा गाकर शान्ति से हट जाता था। तब एक रात में चार गाने रिकार्ड होते थे। बाहर की कोई आवाज परेशान न करे इसलिए माइक्रोसॉफ्ट की ग्रहणशीलता को कम करने के लिये, उस पर एक घड़ा उल्टा कर डाल दिया जाता, जिसमें कई छोटे-छोटे छेद कर दिया करते थे। इससे परिणाम अच्छा हुआ करता था।[11]

उन दिनों एक और समस्या थी कि रिकार्डिंग कैसे और कहां की जाए। इस विषय में संगीतकार नौशाद अली ने अपने संस्मरणों का उल्लेख किया है। उनके अनुसार चालीस के दशक में रिकॉर्डिंग के लिये ऐसी जगह ढूंढी जाती थी जो शोर से दूर एकान्त में हो। ऐसे शोर से बचने के लिये रात का इन्तजार करना पड़ता था। साजो-सामान लेकर रात को पार्क में चले जाते परन्तु यहां भी बड़ी भारी समस्या होती थी। जब झण्डे खां उस पार्क में रिकॉर्डिंग कर रहे होते तो हमें वापिस आना पड़ता।

www.ignited.in

क्योंकि पहले से वहां जो भी रिकार्डिंग कर रहे होते थे उन्हें बीच में टोकना ठीक नहीं था और दो-दो गानों की रिकॉर्डिंग एक वक्त में एक ही जगह पर करना कठिन था। इस प्रकार सब किसी न किसी तरह अपना समय बिताते रहते थे। एक बार इसी परेशानी में एक साजिंदा चाय पीने के बाद खाली बर्तनों को चम्मच से छेड़ कर शोर कर रहा था। फिर भी उसी जगह पर संगीतकार के रिकॉर्डिंग के निर्णय को सुनकर सभी चौंक पड़े। शोर को दूर करने के लिये खाली बोरों को जमा कर और मोटे-मोटे कपड़ों के पर्दों को लेकर 20 फीट लम्बा और 10 फीट चौड़ा एक कमरा बनाया गया। गूंज को खाली बोरों ने अपने अन्दर समा लिया और आज तक वे बोरे गूंज को अपने अन्दर समाए हुए हैं।[12]

बाद में इन बोरों का स्थान दीवार ने ले लिया। इस प्रकार रिकार्डिंग थियेटरों का उद्भव हुआ। आरम्भ में जैसे बोरों में छिद्र होते थे उसी प्रकार आज छिद्रयुक्त दीवारें प्रत्येक रिकॉर्डिंग थियेटर में बनी हुई हैं। छिद्रयुक्त दीवार और बाहर बनी दीवार के बीच 10 से 15 इंच की दूरी आवश्यक होती है। 'ग्लास पूल' जिसे शीशे और सूत को मिलाकर बनाया जाता है उसकी छिद्रयुक्त दीवारों में ध्वनि की अशुद्धियों को सोखने की अपूर्व शक्ति होती है।[13] कालान्तर में जैसे-जैसे तकनीक का विकास हुआ तो कला में भी निखार आने लगा। आरम्भ में चित्रपटों में बेवजह गीतों की भरमार होती थी और संगीत भी इतना असरदार नहीं होता था। अत: संगीतकारों ने संगीत की ओर विशेष ध्यान देना आरम्भ किया। निर्देशकों ने भी चित्रपट के स्तर को उन्नत करने के लिये कदम उठाए।

चित्रपट 'चंडीदास' के बांगला एवं हिन्दी रूपांतरों से रामचन्द्र बोराल और चित्रपट निर्देशक देवकी बोस ने पार्शव संगीत की शुरूआत की। पार्शव संगीत (बैकग्राउंड म्यूजिक) के आरम्भिक उपयोगकर्त्ताओं में संगीतकार केशवराव भोले का प्रमुख स्थान है। पार्शव संगीत ने चित्रपटों के दृश्यों को अत्यन्त प्रभावशाली बना दिया। पार्शव संगीत और आर्केस्ट्रा का प्रयोग इस बात का द्योतक था कि अब संगीत और चित्रपट संगीत के क्षेत्र में एक नई क्रान्ति का उदय होने वाला है। इसी नयी संभावना ने चित्रपट को व्यवसाय (उद्योग) बना दिया। इसी व्यवसायिक प्रतिस्पर्धा ने नये संगीतकारों को अपने संगीत में नई तकनीकों का प्रयोग करने के लिये प्रेरित किया। इस नई परम्परा के ध्वजवाहक गुलाम हैदर, खेमचन्द प्रकाश, नौशाद अली, सी. रामचन्द, आर.सी. बोराल, अशोक घोष, पंकज मलिक, अनिल विश्वास, झण्डे खां, एस.डी. बर्मन जैसे संगीतकारों ने चित्रपट संगीत की नींव को और मजबूत किया। अपनी लगन और मेहनत से इन्होंने चित्रपट संगीत में नये कीर्तिमान स्थापित किये।[14]

आरम्भिक चित्रपटों में गीत व्यर्थ ही डाल दिये जाते थे। किन्तु वर्ष 1935 में प्रदर्शित चित्रपट 'देवदास' ने इस परम्परा को तोड़ दिया। इस चित्रपट से गीत की स्वतन्त्र शक्ति का प्रारम्भ हुआ। चित्रपट 'देवदास' ने पर्याप्त लोकप्रियता प्राप्त की। इसका प्रभाव कई वर्षों तक दूसरे चित्रपटों पर रहा। इस चित्रपट में के.एल. सहगल का गायन एवं अभिनय दोनों ही अविस्मरणीय रहे। सहगल का गाया हुआ गीत 'बालम आन बसो मोरे मन में' हमेशा याद किया जाता रहेगा। इस चित्रपट का एक और गीत 'दु:ख के दिन अब बीतत नाहीं' भी लोकप्रिय हुआ। इस चित्रपट के संगीत निर्देशक थे तिमिर बरन जिन्होंने इस चित्रपट के गीतों को अविस्मरणीय संगीत दिया।

वर्ष 1936 में प्रदर्शित चित्रपट 'अछूत कन्या' का संगीत निर्देशन, हिन्दी चित्रपट की प्रथम संगीत निर्देशिक सरस्वती देवी ने किया। इस चित्रपट के तीन गीत विशेष लोकप्रिय हुए एक 'कित गये हो खेवनहार' जिसे स्वयं सरस्वती ने गाया। दूसरा गीत 'मैं बन की चिड़िया बनके बन-बन डोलूं रे' जिसे अशोक कुमार और देविका रानी ने गाया था जबकि तीसरा गीत 'चूड़ी मैं लाया अनमोल' गीत अरूण कुमार ने गाया था। इस चित्रपट के तीनों ही गीत लोकप्रिय हुए। वर्ष 1936 में प्रदर्शित चित्रपट 'मनमोहन' के संगीत निर्देशक अशोक घोष और गायक-गायिका सुरेन्द्र और बिब्बो ने भी इतिहास रचा। इस चित्रपट के गीत सरल थे इसलिये जल्दी लोकप्रिय हो गये। सुरेन्द्र और बिब्बो द्वारा गाया गया एक गीत 'तुम्हीं ने मुझको प्रेम सिखाया' विशेष लोकप्रिय हुआ। इसी वर्ष 'मंजिल' चित्रपट भी आया जिसके संगीत निर्देशक आर.सी. बोराल थे। इस चित्रपट में पंकज मलिक द्वारा गाया गीत 'सुन्दर नारी प्रीतम प्यारी' बहुत लोकप्रिय हुआ।[15]

वर्ष 1937 के चित्रपट 'विद्यापति' के गीत भी लोकप्रिय रहे जिसके संगीत निर्देशक आर.सी. बोराल थे। इस चित्रपट में कानन देवी द्वारा गाया गीत 'मोरे अंगना में आए आली' ने खूब प्रसिद्धि प्राप्त की।

वर्ष 1938 में चित्रपट 'स्ट्रीट सिंगर' प्रदर्शित हुआ। इसके निर्देशक भी आर.सी. बोराल थे जिन्होंने इस चित्रपट में बेमिसाल संगीत दिया। इसमें एक ठुमरी 'बाबुल मोरा नैहर छूटा जाये' जन-जन की जुबान पर था जिसे

के.एल. सहगल ने गाया था। आज भी इस गीत की लोकप्रियता कम नहीं हुई। इसी वर्ष एक और महत्त्वपूर्ण चित्रपट 'धरती माता' का प्रदर्शन हुआ जिसके संगीत निर्देशक पंकज मलिक थे। इस चित्रपट का एक गीत 'मैं मन की बात बताऊँ' और दूसरा गीत 'दुनिया रंग-बिरंगी बाबा' बड़े लोकप्रिय हुए जिसे उमा शशि और सहगल ने गया था।[16]

वर्ष 1939 चित्रपट की दुनिया में गीत-संगीत की दृष्टि से बड़ा महत्त्वपूर्ण था। इस वर्ष 'आदमी', 'जवानी की रात', 'कपाल कुण्डला', 'पुकार', 'दुश्मन' आदि चित्रपट प्रदर्शित हुए। 'आदमी' चित्रपट का गीत 'मन पापी भूला कौन इसे समझाये' बड़ा लोकप्रिय हुआ जिसे सुन्दरबाई, शाहूमोदक और शान्ता हुबलीकर ने गाया था। 'कपाल-कुण्डला' इस वर्ष के सर्वोत्तम चित्रपटों में से एक था। इस चित्रपट के गीत 'पिया-मिलन को जाना' जिसे पंकज मलिक ने गाया था आज भी उनकी याद दिलाता है।[17] वर्ष 1939 में द्वितीय विश्वयुद्ध आरम्भ हुआ। लेकिन इसका चित्रपटों के निर्माण पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा और पूर्व की भान्ति रचनात्मक और कलात्मक चित्रपटों का निर्माण जारी रहा।

वर्ष 1940 में कई उल्लेखनीय चित्रपटों का प्रदर्शन हुआ। 'बन्धन', 'नर्तकी' और 'औरत' इस वर्ष के यादगार चित्रपट थे। 'बन्धन' चित्रपट का संगीत निर्देशन सरस्वती देवी ने किया था। इस चित्रपट के लगभग सभी गीत लोकप्रिय हुए। इसके एक गीत 'चना जोर गरम बाबू मैं लाया' को अरूण कुमार ने गाकर अमर कर दिया। इसका दूसरा गीत 'पीयू पीयू बोल प्राण पपीहे' भी लोकप्रिय हुआ जिसे गाया था प्रदीप ने। इसी वर्ष प्रदर्शित चित्रपट नर्तकी में भी आकर्षक गीत-संगीत था। इसके दो गीत विशेष लोकप्रिय हुए। एक पंकज मलिक का गाया गीत 'मदभरी रूत जवान है' लोगों की जुबान पर छा गया। उनका दूसरा गीत 'ये कौन आज आया सवेरे-सवेरे' भी उतना ही लोकप्रिय हुआ।[18]

वर्ष 1940 से पूर्व गीतों की रचनाओं में शास्त्रीय संगीत के कठोर नियमों का पालन किया जाता था। धुनों को रचने में शब्द रचना के आधार पर ही राग का चुनाव किया जाता था। गीत में यदि प्रात:काल का उल्लेख है तो प्रात:कालीन राग और यदि सांयकाल का उल्लेख है तो किसी सायंकालीन राग में ही उसे संगीतबद्ध किया जाता था। उदाहरणार्थ वर्ष 1937 में प्रदर्शित चित्रपट 'दुनिया न माने' में संगीतकार केशव राव भोले ने 'सेज सुख की है खुशी की रात है' नामक गीत को सायंकालीन राग यमन में संगीतबद्ध किया। इसी प्रकार वर्ष 1939 में आये चित्रपट 'आदम' के संगीतकार कृष्ण राव ने 'जाग, जाग, जाग, जाग, मीठी नींद से जरा' नामक गीत के शब्दों के भावों के अनुकूल प्रात: में गाये जाने वाले राग भैरव में संगीतबद्ध किया। इस प्रकार तत्कालीन संगीतकारों ने शास्त्रीय संगीत की गरिमा को बनाए रखा। तीस के दशक का चित्रपट संगीत, शास्त्रीय परम्पराओं में सिमटा रहा। संगीतकार प्राय: गीत की शब्द रचना को ध्यान में रखकर ही रागों का प्रयोग करते थे। किन्तु चालीस के दशक के आरम्भ में धीरे-धीरे शास्त्रीय संगीत का बन्धन समाप्त होने लगा। पूर्व के गीत जहां सपाट और सीधे होते थे वहां इसकी रचना में सौन्दर्य बोध का ध्यान रखते हुए, सुन्दर अलंकरणों का प्रयोग होने लगा। इस दशक में संगीत की अपनी स्वतंत्र शैली उत्पन्न हुई। जनता ने न केवल इस परिवर्तन को पसंद किया बल्कि सराहा भी। विविध प्रकार के वाद्यों के उपयोग से संगीत कर्णप्रिय होने लगा। चित्रपटों के गीतों को आमजन गुनगुनाने लगा।

वर्ष 1941 में संगीत की दृष्टि से कई चित्रपट प्रदर्शित हुए। 'डॉक्टर', 'झूला', 'चित्रलेखा', 'लगन', 'खजांची' आदि इनमें मुख्य चित्रपट थे। 'डॉक्टर' में संगीत पंकज मलिक ने दिया था। इस चित्रपट के दो गीतों को स्वयं पंकज मलिक ने गाया था जो बड़े लोकप्रिय हुए। एक गीत था, 'चले पवन की चाल जग में' और दूसरा था 'महक रही फुलवारी हमरी।'[18] इसी वर्ष 'झूला' चित्रपट प्रदर्शित हुआ जिसका संगीत निर्देशन सरस्वती देवी ने किया। इस चित्रपट का संगीत काफी प्रभावी और विशेष लोकप्रिय रहा। इस चित्रपट के सभी गीतों ने जनसाधरण का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया। प्रथम गीत 'न जाने किधर आज मेरी नाव चली' के गायक अशोक कुमार, दूसरे गीत 'मैं तो दिल्ली से दुल्हन लाया रे' के गायक अरूण और रहमत बानो और तीसरे गीत 'देखों हमरे राजा की आज', को भी अरूण कुमार और रहमत बानो ने ही गाया था। इसी कालखण्ड में गुलाम हैदर, नौशाद, एस.डी. बर्मन जैसे संगीतकारों ने चित्रपट जगत में पर्दापण किया। चित्रपटों ने अपनी पुरानी परम्पराओं को तोड़ा जिससे परिस्थितियां बदलने लगी। चित्रपटों में इस प्रकार के संगीत का प्रयोग होने लगा जो अधिक से अधिक लोगों को अपनी ओर आकर्षित कर सके। चित्रपट संगीत को और अधिक आकर्षक बनाने के लिये संगीतकारों ने अपनी जन्मभूमि की सौंधी खुशबू को फैलाना प्रारम्भ किया अर्थात् चित्रपट संगीत में अपने

www.ignited.in

प्रदेश के लोक संगीत का समावेश कर शानदार धुनें बनाई। गुलाम हैदर ने संगीत में पंजाबी लोक संगीत का प्रयोग किया। वर्ष 1941 में 'पंचोली आर्ट्स पिक्चर्स' ने पंजाब में पहले चित्रपट 'खंजाची' का निर्माण किया जिसमें गुलाम हैदर ने पंजाबी लोकधुनों का प्रयोग किया। इसी वर्ष एक महत्त्वपूर्ण चित्रपट 'चित्रलेखा' का निर्माण हुआ। इस चित्रपट के संगीत निर्देशक उस्ताद झण्डे खां ने इस चित्रपट के संगीत में राग भैरवी का अद्भुत प्रयोग करके एक नया कीर्तिमान स्थापित किया जो सदैव याद रहेगा। इस चित्रपट में सात गीत थे और सातों ही गीतों को इन्होंने राग भैरवी में स्वरबद्ध किया। इसके गीत 'सैंया सांवरे भये बावरे', 'तुम जागो बड़े भगवान बने' तथा 'सुन-सुन नील कमल मुस्काए', तीनों गीतों को गायिका रामदुलारी ने मधुर स्वर दिया।

वर्ष 1942 में 'शारदा' चित्रपट का प्रदर्शन हुआ जिसका संगीत निर्देशन नौशाद अली ने किया। इसके एक गीत 'पंछी जा, पीछे जा रहा है बचपन मेरा' को सुरैया ने बड़ी खूबसूरती से गाया।[20] वर्ष 1943 में गीत-संगीत की दृष्टि से कई चित्रपट लोकप्रिय हुए। संगीतकार नौशाद अली ने चित्रपट 'नमस्ते' में गायक जी.एम. दुर्रानी से 'जादूगर मोरी नगरिया में आए' गवाया तथा 'आए भी वो गये भी वो'- गायिका पारूल घोष से गवाया जो बड़े लोकप्रिय हुए। संगीतकार कमलदास गुप्ता ने 'हॉस्पीटल' चित्रपट के गीत 'प्रभु जी राखो लाज हमारी' तथा दूसरा गीत 'जरा नैनों से नैना मिलाय जाओ' गायिका कानन देवी से गवाया जो विशेष लोकप्रिय रहे। संगीतकार शंकरराव व्यास का चित्रपट 'रामराज्य' का गीत-संगीत भी उच्च श्रेणी का रहा। इसके लोकप्रिय गीत 'बीना मधुर-मधुर कछु बोल' को गायिका शमशाद बेगम तथा 'भारत की इक संवारी' को गायक सहगल ने गाकर अमर कर दिया। संगीतकार खेमचन्द प्रकाश ने चित्रपट 'तानसेन' में अपना सर्वश्रेष्ठ संगीत दिया। यह चित्रपट संगीत सम्राट तानसेन के जीवन पर आधारित था। इसके मधुर संगीत ने खेमचन्द प्रकाश का नाम स्वर्णाक्षरों में लिख दिया। इसके गीत 'घटा घनघोर-घोर' को गायिका खुर्शीद बानो, 'काहे गुमान करे री गोरी', को गायक सहगल, 'मोरे बालपन के साथी छैला' को गायक सहगल तथा खुर्शीद ने, 'बाग लगा दूं सजनी' तथा 'बिना पंख का पंछी हूं मैं' को गायक सहगल तथा 'बरसो रे बरसो रे' काले बदरवा को गायिका खुर्शीद बानों ने गाकर समा बांध दिया।[21]

वर्ष 1944 में नौशाद, खेमचन्द्र प्रकाश, एस.के. पाल और पंकज मलिक इत्यादि ने श्रेष्ठ गीत-संगीत की रचना की। संगीतकार नौशाद ने 'रतन' में लोकप्रिय गीत दिये जिन्हें आज भी लोग बड़े चाव से सुनते हैं। ये दो गीत हैं 'अखियां मिलाके जिया भरमा के' तथा 'जब तुम ही चले परदेस लगा के ठेस' को गायिका ज़ोहरा बाई ने गाया। संगीतकार पंकज मलिक द्वारा गाये चित्रपट 'मेरी बहन' के दो गीत विशेष लोकप्रिय हुए। ये थे 'दो नैना मतवारे तिहारे' तथा 'छुपो ना छुपो ना ओ प्यारी' जिन्हें गायक के.एल. सहगल ने गाया। संगीतकार नौशाद अली ने वर्ष 1946 में दो बहुत ही उच्च कोटि के चित्रपट 'शाहजहां' और 'अनमोल घड़ी' में संगीत निर्देशन किया। दोनों ही चित्रपटों ने गीतों के कारण विशेष लोकप्रियता प्राप्त की। चित्रपट 'अनमोल घड़ी' में नूरजहां की सुरीली गायकी ने जादू सा बिखेर दिया। दोनों चित्रपटों के गीतों ने सब ओर धूम मचाई।

चित्रपट 'शाहजहां' में 'ए दिले बेकरार झूम' तथा 'जब दिल ही टूट गया', 'चाह बरबाद करेगी हमें', 'गम दिए मुस्तफिल, इतना नाजुक है दिल' को सहगल ने अपनी आवाज़ देकर अमर कर दिया। इसी प्रकार 'अनमोल घड़ी' में 'आवाज दे कहां है' को नूरजहां तथा सुरेन्द्र, 'मेरे बचपन के साथी, मुझे भूल न जाना' तथा 'क्या मिल गया भगवान को' गायिका नूरजहां एवं 'क्यूं याद आ रहे हैं गुजरे' को गायक सुरेन्द्र ने गाकर धूम मचा दी।[22]

हिन्दी चित्रपट संगीत के लिये चालीस के दशक का अन्तिम चरण विशेष महत्त्वपूर्ण था। इस कालखण्ड में हिन्दी चित्रपट संगीत में और निखार आने लगा। इस दशक की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि चित्रपट के गीतों की धुनों में भारत के विभिन्न भागों के लोक संगीत प्रयोग किया जाने लगा जिसमें भारत की सांस्कृतिक विरासत की झलक साफ दिखाई पड़ती है। कई जाने माने संगीतकारों ने अपनी कला का रंग बिखेरा। नौशाद अली ने उत्तर-प्रदेश, अनिल विश्वास और एस.डी. बर्मन ने बंगला प्रदेश और गुलाम हैदर ने पंजाब की लोकधुनों पर आधारित धुनें बनाई और चित्रपटों में उनका रचनात्मक प्रयोग किया। लोक संगीत के प्रयोग का प्रभाव हमारी राष्ट्रीय एकता की बदलती विचारधारा का परिणाम था। परन्तु दुर्भाग्यवश वर्ष 1947 में के.एल. सहगल का आकस्मिक निधन हो गया। उनके कारण उत्पन्न रिक्तता की पूर्ति के रूप में मोहम्मद रफ़ी, मन्ना डे, किशोर, लता मंगेशकर, आशा भोसले आदि नई प्रतिभाओं ने अपनी प्रतिभा का जादू दिखाना आरम्भ किया।[23] इस रिक्त क्षितिज पर एक ध्रुवतारे की भान्ति उभरे, मुहम्मद रफ़ी जिन्होंने अपनी

आवाज़ के तिलिस्म से चित्रपट संगीत को नए आयाम दिये।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. मुकेश गर्ग, फिल्म संगीत अंक, जनवरी-फरवरी 1998, पृ. 4

2. मुकेश गर्ग, फिल्म संगीत अंक, जनवरी-फरवरी 1998, पृ. 5

3. संगीतकार नौशाद अली, कार्यक्रम, 'दा मेकिंग ऑफ ए लीजैण्ड', जी सिनेमा 5.8.2001 सायं 8.30 पर

4. डॉ. महेन्द्र मित्तल, भारतीय चलचित्र, पृ. 28

5. विनोद भारद्वाज, समय और सिनेमा, पृ. 11

6. लक्ष्मीनारायण गर्ग, फिल्म संगीत इतिहास अंक, जनवरी-फरवरी 1998, पृ. 25

7. लक्ष्मीनारायण गर्ग, फिल्म संगीत इतिहास अंक, जनवरी-फरवरी 1998, पृ. 26

8. डॉ. महेन्द्र मित्तल, भारतीय चलचित्र, पृ. 29

9. आलेख जयकान्त शर्मा, 'पचास साल पहले की बात', नवभारत टाइम्स, नई दिल्ली, 14 अप्रैल 1987, पृ. 4

10. आलेख जयकान्त शर्मा, 'पचास साल पहले की बात', नवभारत टाइम्स, नई दिल्ली, 4 अप्रैल 1987, पृ. 4

11. संगीतकार नौशाद अली, कार्यक्रम, 'दा मेकिंग ऑफ लीजैण्ड', जी सिनेमा, 12 अगस्त 2001, सांय 8 बजकर 30 मिनट

12. संगीतकार नौशाद अली, कार्यक्रम, दा मेकिंग ऑफ ए लीजैण्ड', जी सिनेमा, 12.8.2001, सांय 8.30 पर

13. संगीतकार नौशाद अली, कार्यक्रम, दा मेकिंग ऑफ ए लीजैण्ड', जी सिनेमा, 12.8.2001, सांय 8.30 पर

14. आलेख वी.के. शुक्ला, 'कुछ पुराने चित्रपटों के गीत-संगीत पर एक नज़र', सरिता, अगस्त 1981, पृ. 25

15. फिल्म फेयर पत्रिका, फरवरी 1-10-1987, पृ. 52

16. आलेख एन. त्रिवेदी, 'बीते दिनों की याद', राजस्थान पत्रिका, 14 जनवरी 2002, पृ. 2

17. वही, पृ. 3

18. आलेख एन. त्रिवेदी, 'बीते दिनों की याद', राजस्थान पत्रिका, 14 जनवरी 2002, पृ. 3

19. डॉ. इन्दु शर्मा 'सौरभ', भारतीय फिल्म संगीत में ताल समन्वय, पृ. 30

20. आलेख-जयकान्त शर्मा, 'पचास साल पहले की बात', नवभारत टाइम्स, '4 अप्रैल 1987', नई दिल्ली, पृ. 5

21. आलेख एन. त्रिदेवी, 'बीते दिनों की याद', राजस्थान पत्रिका, 19 जनवरी 2002, पृ. 4

22. संगीत, 'मुकेश, तलतमहमूद, महेन्द्र कपूर', अप्रैल-जून 1991, पृ. 7

23. लक्ष्मीनारायण गर्ग, फिल्म संगीत इतिहास अंक, जन-फर 1998, पृ. 28

Corresponding Author

Komal Vashistha*

Research Scholar, OPJS University, Churu, Rajasthan